

मो. फिरोज अहमद खालिद

बनाम

मणिपुर राज्य और अन्य

(सिविल अपील क्र. 337/2018)

22 अप्रैल 2025

(न्यायमूर्ति श्री एम.एम. सुंदरेश* एवं न्यायमूर्ति श्री राजेश बिंदल)

विचारणीय बिंदु

क्या राज्य या केंद्र शासित प्रदेश (बार काउंसिल) के बार काउंसिल का कोई मुस्लिम सदस्य, जो वक्फ अधिनियम, 1995 की धारा 14 के तहत गठित वक्फ बोर्ड (बोर्ड) का सदस्य चुना गया हो, वह बार काउंसिल में अपना कार्यकाल खत्म होने के बाद भी उस पद पर बना रह सकता है।

शीर्ष टिप्पणियाँ †

वक्फ एक्ट, 1995 – धारा 14(1)(ख) का स्पष्टीकरण ॥ – अपीलकर्ता को बार काउंसिल का सदस्य चुना गया – तत्पश्चात, उसे 7 वीं वक्फ बोर्ड समिति के सदस्य में से एक के तौर पर नियुक्त किया गया, क्योंकि पूर्व सदस्य-प्रत्यर्थी क्रमांक 3 मणिपुर बार काउंसिल के सदस्य नहीं रहे थे – प्रत्यर्थी क्रमांक 3 ने रिट याचिका दायर की – चुनौती इस आधार पर थी कि 1995 अधिनियम के तहत ऐसा कोई प्रावधान नहीं है, जो यह तय करता हो कि बोर्ड का कोई सदस्य अपने पद पर नहीं बना रहेगा, अगर वह अब बार काउंसिल का सदस्य नहीं है – उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका खारिज कर दी – हालांकि, उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने अपीलकर्ता को बोर्ड का सदस्य नियुक्त करने के आदेश को रद्द कर दिया – यथार्थता :

अभिनिर्धारित: 1995 के अधिनियम की धारा 14(1)(ख) के स्पष्टीकरण ॥ में प्रयुक्त शब्द “संदेह दूर करने के लिए”, उस स्पष्टीकरण की स्पष्टीकरणात्मक प्रकृति पर रोशनी डालते हैं – हालांकि 1995 के अधिनियम की धारा 14(1)(ख) के स्पष्टीकरण ॥ में यह स्पष्ट रूप से उल्लिखित नहीं किया गया है कि बोर्ड में बार काउंसिल के मुस्लिम सदस्य का कार्यकाल भी बार काउंसिल में उनके कार्यकाल के साथ ही सह-विस्तृत होता है, लेकिन पूरे प्रावधान को पढ़ने पर, इसे निहित समझा जाना चाहिए – ऐसा इसलिए है क्योंकि के अधिनियम की धारा 14(ख)(i), 14(ख)(ii), और 14(ख)(iii) में सूचीबद्ध श्रेणियों के तहत लोगों की पात्रता, या तो संसद, या राज्य विधान सभा, या बार काउंसिल में उनकी सदस्यता पर निर्भर करती है— संसद, या राज्य विधान सभा या बार काउंसिल में ऐसी सदस्यता के बिना, बोर्ड में उनकी सदस्यता का आधार ही खत्म हो जाता है – बार काउंसिल के सदस्य पर 1995 के अधिनियम की धारा 14(1)(ख) के स्पष्टीकरण ॥ की प्रयोज्यता को बाहर करने का कोई संतोषजनक औचित्य नहीं है – वास्तव में, ऐसी प्रयोज्यता को बाहर करना विधि के पीछे की विधायी मंशा के ऐसी होगा। – निहित समावेशन का समर्थन, 1995 के अधिनियम की धारा 14(2) में जोड़े गए दो परंतुक से भी होता है – इसलिए, प्रत्यर्थी क्रमांक 3, जो अब बार काउंसिल के मुस्लिम सदस्य के उक्त पद पर नहीं है, उसे यह कहने की इजाजत नहीं दी जा सकती कि बार काउंसिल का सदस्य न रहने के बाद भी, वह बोर्ड का सदस्य बना रहने का हकदार होगा – वर्तमान में, अपीलकर्ता संबंधित बार काउंसिल में एकमात्र मुस्लिम सदस्य है – अपीलकर्ता की बार काउंसिल

में सदस्यता के कारण बोर्ड का सदस्य बने रहने की पात्रता के सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं है — इसलिए, आक्षेपित निर्णय अपास्त किया जाता है। [कंडिका 11, 12, 18, 19]

भारत का संविधान — अनुच्छेद 14 — उचित वर्गीकरण का सिद्धांत — 1995 के अधिनियम की धारा 14(1)(ख) के स्पष्टीकरण ॥ पर लागू होना:

अभिनिर्धारित: 1995 के अधिनियम की धारा 14(1)(ख) के स्पष्टीकरण ॥ को, यहाँ तक कि जो संविधान के अनुच्छेद 14 के न्यायशास्त्र से विकसित उचित वर्गीकरण के सिद्धांत के प्रकाश में भी, जो विधि के समक्ष समता और विधियों का समान संरक्षण का प्रावधान करता है, को बार काउंसिल के मुस्लिम सदस्य पर भी लागू करना, स्वाभाविक है— एक वर्गीकरण तभी प्रासंगिक होगा जब कोई स्पष्ट अंतर हो जिसका विधि के द्वारा प्राप्त किये जाने वाले उद्देश्य से एक तर्कसंगत संबंध है — इस मामले में, 1995 के अधिनियम की धारा 14(1)(ख) के स्पष्टीकरण ॥ को यह दर्शाने के लिए कि बार काउंसिल का मुस्लिम सदस्य, अपनी पिछला पद खोने के बावजूद भी बोर्ड का सदस्य बना रहेगा, अतिशयोक्तिपूर्ण व्याख्या देना, इसका मतलब होगा संसद सदस्यों के साथ और राज्य विधान सभा के सदस्यों को बार काउंसिल के सदस्यों से अलग मानने जैसा होगा — प्रावधान की योजना से इस तरह के वर्गीकरण के लिए कोई बोधगम्य अंतर नहीं दिखाई देता है— वास्तव में, यह कंडिका को पूरी तरह से फिर से लिखने जैसा है — 1995 के अधिनियम की धारा 14(1)(ख) के स्पष्टीकरण ॥ को यह अर्थ देने के लिए कि बोर्ड में सदस्य बने रहने वाले बार काउंसिल के सदस्य का कार्यकाल, बार काउंसिल में उनकी सदस्यता के साथ ही सह-विस्तृत हो जाएगा, उसका सामंजस्यपूर्ण अर्थान्वयन और उद्देश्यपूर्ण व्याख्या करनी होगी। [कंडिका 15]

कानूनों की व्याख्या — किसी भी प्रावधान का उद्देश्य — किसी प्रावधान या व्याख्या का इस्तेमाल कई उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है:

अभिनिर्धारित: किसी भी प्रावधान का उद्देश्य उसके आस-पास के प्रावधान के आलोक में देखा जाना चाहिए, जिसमें परंतुक और उसके साथ दिए गए स्पष्टीकरण शामिल हैं — जब किसी व्यक्ति को कोई अधिकार उसके किसी पद के कारण मिलता है, तो वह अंततः एक योग्यता बन जाती है — एक बार जब ऐसी योग्यता खत्म हो जाती है, तो वह व्यक्ति अपने पिछले पद के आधार पर कोई दूसरा पद लेने के लिए पात्र नहीं होगा, जब तक कि विधि स्पष्ट रूप से इसका प्रावधान न करे — एक स्पष्टीकरण, जो किसी वर्ग के बारे में सिर्फ एक स्पष्टीकरण की प्रकृति का है, उसे इस तरह से नहीं पढ़ा जा सकता कि वह प्रावधान के मुख्य भाग का उल्लंघन करता हो — हालांकि आम तौर पर, परंतुक का इस्तेमाल प्रावधान के मुख्य भाग को समझने के लिए नहीं किया जा सकता है, लेकिन ऐसा करने में कोई पूर्ण प्रतिबाध नहीं है, विशेष रूप से उन मामलों में जहाँ विधि विशिष्ट है और परंतुक कोई अपवाद नहीं बनाता है — उपरोक्त उद्देश्य के लिए, स्पष्टीकरण को परंतुक के जरिए भी समझा जा सकता है — दूसरे शब्दों में, अगर परंतुक या स्पष्टीकरण, जैसा भी मामला हो, इस तरह से लिखा गया है जिससे प्रावधान के मुख्य भाग में निहित उद्देश्य पर ज्यादा बल देता है, तो उसे समझने में कोई मुश्किल नहीं होगी — फलस्वरूप, एक परंतुक या स्पष्टीकरण का इस्तेमाल कई उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है — इसलिए, यह अपेक्षित है कि न्यायालय किसी प्रावधान की, उसमें निहित परंतुक या स्पष्टीकरण की व्याख्या करने से पहले ऐसे प्रयोग के सन्दर्भ को समझें। [कंडिका 14]

विधिक कहावत — "एक्सप्रेसियो यूनियस एस्ट एक्सक्लूशन अल्टेरियस " (Expressio unius est exclusion alterius) — लागू नहीं। [कंडिका 16]

दत्तात्रेय गोविंद महाजन बनाम महाराष्ट्र राज्य [1977] 2 एससीआर 790 : (1977) 2 एससीसी 548; एस. सुंदरम पिप्पई बनाम पट्टाभिरामन [1985] 2 एससीआर 643 : (1985) 1 एससीसी 591; आंध्र प्रदेश सरकार बनाम कॉर्पोरेशन बैंक [2007] 4 एससीआर 530 : (2007) 9 एससीसी 55; किलोस्कर फेरस इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम भारत संघ (2025) 1 एससीसी 695; शैलेश धैर्यवान बनाम मोहन बालकृष्ण लुल्ला [2015] 12 एससीआर 70 : (2016) 3 एससीसी 619; ग्रिड कॉर्पोरेशन उड़ीसा लिमिटेड बनाम ईस्टर्न मेटल्स एंड फेरो अलॉयज [2010] 10 एससीआर 779 : (2011) 11 एससीसी 334; असिस्टेंट कलेक्टर, सेंट्रल एक्साइज बनाम नेशनल टोबैको कंपनी [1973] 1 एससीआर 822 : (1972) 2 एससीसी 560; कर्नाटक राज्य बनाम भारत संघ [1978] 2 एससीआर 1 : (1977) 4 एससीसी 608 – भरोसा किया गया

महाराष्ट्र राज्य बनाम शेख महमूद और अन्य, सिविल अपील क्रमांक 2784/2022, जो विशेष अनुमति याचिका(सिविल) क्रमांक 11652/2021 से उद्भूत हुआ था, जिस पर 06.04.2022 को निर्णय पारित किया गया; श्री आसिफ पुत्र शौकत कुरैशी बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, रिट याचिका क्रमांक 4343/2016, जिस पर 22.12.2016 को मुंबई उच्च न्यायालय, नागपुर न्यायपीठ द्वारा रण्य पारित किया गया; भारत संघ बनाम बी.सी. नॉन और अन्य, 1971 एससीसी ऑनलाइन कलकत्ता 180 : (1972) 84 आईटीआर 526 : 1971 टैक्स लॉ रिपोर्टर 1198; सीफोर्ड कोर्ट एस्टेट्स लिमिटेड बनाम एशर [(1949) 2 के.बी. 481] – संदर्भित।

अधिनियमों की सूची

वक्फ अधिनियम, 1995; भारत का संविधान

कीवर्ड की सूची

वक्फ अधिनियम, 1995 की धारा 14(1)(b) के स्पष्टीकरण II की व्याख्या ; बार काउंसिल के मुस्लिम सदस्य; वक्फ बोर्ड के सदस्य; वक्फ बोर्ड समिति; अनिवार्य प्रावधान; स्पष्टीकरणात्मक प्रकृति; प्रावधान का मूल भाग; “एक्सप्रेसियो यूनियस एस्ट एक्सक्लूजन अल्टेरियस”; निहित समावेशन; विधि के पीछे विधायी मंशा के विपरीत; भारत के संविधान का अनुच्छेद 14; उचित वर्गीकरण का सिद्धांत; इंबोधगम्य अंतर; सामंजस्यपूर्ण अर्थान्वयन; उद्देश्यपूर्ण व्याख्या; सह-विस्तारी।

किससे उद्भूत मामला

सिविल अपील अधिकार क्षेत्र: सिविल अपील क्र. 3797/2025

मणिपुर उच्च न्यायालय, इंफाल के रिट अपील क्र. 75/2023 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 23.11.2023 से

सिविल अपील क्र. 3798 of 2025 के साथ

पक्षकारों की ओर से उपस्थित अधिवक्तागण

आर बालासुब्रमण्यम, वरिष्ठ अधिवक्ता, पुखरामबम रमेश कुमार, करुण शर्मा, सुश्री अनुपमा नंगागोम, राजकुमारी दिव्यासना, डेविड अहोंगसांगबाम, एस गुणबंता मेइतेई, देबाशीष मिश्रा, राहुल कुमार, राजीव एल महुंता, सुश्री राजकुमारी बंजू। – अधिवक्ता वास्ते अपीलकर्ता

बी.पी. साहू, वरिष्ठ अधिवक्ता, पुखरामबम रमेश कुमार, करुण शर्मा, सुश्री अनुपमा नंगागोम, सुश्री राजकुमारी दिव्यासना, बी. कृष्णा प्रसाद, श्रीमती रजनी के प्रसाद– अधिवक्ता वास्ते प्रत्यर्थीगण

निर्णय

न्यायमूर्ति श्री एम.एम. सुंदरेश

1. इन अपीलों में विचार के लिए छोटा सा मुद्दा यह है कि क्या राज्य या केंद्र शासित प्रदेश की बार काउंसिल का कोई मुस्लिम सदस्य (जिसे आगे **“बार काउंसिल”** कहा जाएगा), जो वक्फ अधिनियम, 1995 (जिसे आगे **“1995 का अधिनियम”** कहा जाएगा) की धारा 14 के तहत गठित वक्फ बोर्ड (जिसे आगे **“बोर्ड”** कहा जाएगा) का सदस्य चुना गया हो, बार काउंसिल में अपना कार्यकाल खत्म होने के बाद भी उस पद पर बना रह सकता है।
2. संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं:—

मणिपुर बार काउंसिल ने 26.12.2022 को एक राजपत्र अधिसूचना जारी की थी, जिसके तहत सिविल अपील क्र. 3797/2025 में अपीलकर्ता (जिसे आगे **“अपीलकर्ता”** कहा जाएगा) को बार काउंसिल का सदस्य चुना गया था। इसके बाद, मणिपुर सरकार के आयुक्त-सह-सचिव (अल्पसंख्यक कार्य) ने 08.02.2023 को एक आदेश जारी किया, जिसमें अपीलकर्ता को 7 वीं वक्फ बोर्ड समिति के सदस्य के तौर पर नियुक्त किया गया। यह 1995 के अधिनियम की धारा 14(1)(ख)(iii) और धारा 14(3) के तहत प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए किया गया, क्योंकि सिविल अपील क्र. 3797/2025 में प्रत्यर्थी क्रमांक 3 (जिसे आगे **“प्रत्यर्थी क्रमांक 3”** कहा जाएगा), जो पहले बोर्ड का सदस्य था, अब मणिपुर बार काउंसिल का सदस्य नहीं रहा।
3. प्रत्यर्थी क्रमांक 3 ने मणिपुर उच्च न्यायालय, इंफाल में रिट याचिका (सिविल) क्र. 304/2023 दायर की थी, जिसमें 08.02.2023 के आदेश को रद्द करने का निवेदन किया गया था, जिसके तहत अपीलकर्ता को बोर्ड में नियुक्त किया गया था। उस आदेश को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि 1995 के अधिनियम के तहत ऐसा कोई प्रावधान नहीं है, जो यह कहता हो कि बोर्ड का कोई सदस्य अपना पद धारण नहीं करेगा, यदि वह अब बार काउंसिल का सदस्य नहीं है। 23.08.2023 के निर्णय और आदेश के तहत, एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका (सिविल) क्र. 304/2023 को खारिज कर दिया, क्योंकि प्रत्यर्थी क्रमांक 3, 17.12.2022 को हुए बार काउंसिल चुनाव हार गया था, और इसलिए, 1995 के अधिनियम की धारा 14(1)(ख) के स्पष्टीकरण ॥ के अधिदेश के अनुसार, वह अब बोर्ड का सदस्य नहीं रह सकता।
4. 23.11.2023 के आक्षेपित निर्णय द्वारा, उच्च न्यायालय की खंडपीठ, 1995 के अधिनियम की धारा 14(1)(ख) के स्पष्टीकरण ॥ पर भरोसा करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यह स्पष्टीकरण केवल उन मामलों के बारे में है जिनमें बोर्ड का कोई सदस्य, जैसा भी मामला हो, जो संसद का सदस्य या राज्य विधान सभा का सदस्य नहीं रह जाता, तो यह माना जाएगा कि उन्होंने बोर्ड में अपना पद छोड़ दिया है। खंडपीठ ने आगे यह निष्कर्षित किया है कि यह स्पष्टीकरण बोर्ड के उस सदस्य पर लागू नहीं होता है, जो संबंधित बार काउंसिल के मुस्लिम सदस्य के तौर पर अपना पद धारण नहीं करता है, और वह बोर्ड के सदस्य के तौर पर अपना पद बनाए रखेगा, भले ही वह बार काउंसिल का मुस्लिम सदस्य न रह गया हो। परिणामस्वरूप, मणिपुर सरकार के आयुक्त-सह-सचिव (अल्पसंख्यक कार्य) द्वारा 08.02.2023 जारी किया गया आदेश, जिसमें अपीलकर्ता को प्रत्यर्थी क्रमांक 3 की जगह बोर्ड का सदस्य नियुक्त किया गया था, को रद्द कर दिया गया, और मणिपुर राज्य को निर्देशित किया गया कि वह प्रत्यर्थी क्रमांक 3 की सेवा 7 वीं वक्फ बोर्ड समिति के सदस्य के तौर पर तब तक जारी रखे, जब तक कि 1995 के अधिनियम की धारा 15 के तहत निर्धारित उनके पद का कार्यकाल पूरा न हो जाए।
5. अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता और मणिपुर राज्य की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने तर्क किया कि 1995 के अधिनियम की धारा 14 स्पष्ट और निस्सन्देह है। उपधारा (1) जो बोर्ड के गठन से संबंधित है, यह निर्धारित करता है कि बोर्ड में अनिवार्य रूप से एक अध्यक्ष होना चाहिए, और अन्य

सदस्यों में, राज्य या राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली के संसद से मुस्लिम सदस्य, राज्य विधानसभा के मुस्लिम सदस्य और बार काउंसिल के मुस्लिम सदस्य शामिल होंगे। 1995 के अधिनियम की धारा 14(1)(ख) का स्पष्टीकरण ॥ सिर्फ यह स्पष्ट करता है कि कोई व्यक्ति जो उस सामुदाय से संसद का सदस्य या राज्य विधानसभा का सदस्य नहीं रह जाता है, उसे बोर्ड के सदस्य के तौर पर अपना पद छोड़ दिया हुआ माना जाएगा। उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा आक्षेपित निर्णय की जो व्याख्या की गई है, वह प्रावधान के मूल भाग के विधायी मंशा के विरुद्ध होगा, और इसलिए, उसमें हस्तक्षेप किया जाना चाहिए।

6. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी क्रमांक 3 के अधिवक्ता ने इस न्यायालय के महाराष्ट्र राज्य बनाम शेख महमूद और अन्य (सिविल अपील क्र. 2784/2022, जो विशेष अनुमति याचिका (सिविल) क्र. 11652/2021 से उद्भूत हुई है) में दिनांक 06.04.2022 को पारित निर्णय और मुंबई उच्च न्यायालय, नागपुर न्यायपीठ, नागपुर के श्री आसिफ पिता शौकत कुरैशी बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (रिट याचिका क्र. 4343/2016) में दिनांक 22.12.2016 को पारित निर्णय पर भरोसा करते हुए तर्क किया है कि इस प्रावधान को संपूर्ण रूप में पढ़ा जाएगा, न कि टुकड़ों में। विधायिका ने अपनी समझदारी से, 1995 के अधिनियम की धारा 14(1)(b) के स्पष्टीकरण ॥ को केवल संसद के सदस्य या राज्य विधान सभा के सदस्य, जो अब उक्त पद धारण नहीं करता, पर लागू करना सही समझा है। “एक्सप्रेसियो यूनियस एस्ट एक्सक्लूसियो अल्टरियस” कहावत पर भरोसा करते हुए, वह तर्क करते हैं कि विधायिका की तरफ से बार काउंसिल के सदस्य को स्पष्टीकरण ॥ के दायरे से बाहर रखने में जानबूझकर यह चूक की गई है। इस मामले के ऐसे परिप्रेक्ष्य में, आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं है।
7. दोनों पक्षों द्वारा किये गए तर्कों के मद्देनजर, हम सबसे पहले 1995 के अधिनियम की धारा 14 का उद्धरण करना सही समझते हैं:

1995 के अधिनियम की धारा 14

14. बोर्ड की संरचना (1) किसी राज्य और दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी संघ राज्यक्षेत्र] का बोर्ड निम्नलिखित से मिलकर बनेगा, अर्थात् :-

(क) एक अध्यक्ष;

(ख) एक और अधिक से अधिक दो सदस्य जो राज्य सरकार ठीक समझे, जिनका निर्वाचन ऐसे प्रत्येक निर्वाचकगण से किया जाएगा, जिसमें-

(i) यथास्थिति, राज्य या [दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र] के मुस्लिम संसद सदस्य,

(ii) राज्य विधान-मंडल के मुस्लिम सदस्य,

(iii) संबंधित राज्य या संघ राज्यक्षेत्र की विधिज्ञ परिषद् के मुस्लिम सदस्य :

परंतु यदि किसी राज्य या किसी संघ राज्यक्षेत्र की विधिज्ञ परिषद् का कोई मुस्लिम सदस्य नहीं है तो, यथास्थिति, राज्य सरकार या संघ राज्यक्षेत्र प्रशासन उस राज्य या संघ राज्यक्षेत्र से किसी ज्येष्ठ मुस्लिम अधिवक्ता को नामनिर्देशित कर सकेगा, और

(iv) ऐसे ओक्लाफ के, जिनकी वार्षिक आय एक लाख या उससे अधिक है, मुतवल्ली, होंगे।

स्पष्टीकरण 1-शंकाओं को दूर करने के लिए यह घोषित किया जाता है कि उपखंड (i) से उपखंड (iv) में वर्णित प्रवर्गों के सदस्य प्रत्येक प्रवर्ग के लिए गठित निर्वाचकगण से निर्वाचित होंगे।

स्पष्टीकरण 2-शंकाओं को दूर करने के लिए यह घोषित किया जाता है कि यदि कोई मुस्लिम सदस्य खंड (ख) के उपखंड (i) में यथानिर्दिष्ट राज्य या दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र से संसद का सदस्य नहीं रहता है या खंड (ख) के उपखंड (ii) के अधीन यथा अपेक्षित राज्य विधान सभा का सदस्य नहीं रहता है तो उस सदस्य के बारे में यह समझा

जाएगा कि उसने उस तारीख से, जिससे वह, यथास्थिति, राज्य या दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र से संसद का सदस्य या राज्य विधान सभा का सदस्य नहीं रहा है, यथास्थिति, राज्य या दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र के लिए बोर्ड के सदस्य का पद रिक्त कर दिया है।]

(ग) मुस्लिमों में से ऐसा एक व्यक्ति, जिसके पास नगर योजना या कारबार प्रबंधन, सामाजिक कार्य, वित्त या राजस्व, कृषि और विकास क्रियाकलापों में वृत्तिक अनुभव है, जिसे राज्य सरकार द्वारा नामनिर्देशित किया जाएगा;

(घ) मुस्लिमों में से एक-एक व्यक्ति, जो शिया और सुन्नी इस्लाम धर्म विद्या के मान्यताप्राप्त विद्वानों में से होगा, जिसे राज्य सरकार द्वारा नामनिर्देशित किया जाएगा;

(ङ) मुस्लिमों में से एक व्यक्ति, जिसे राज्य सरकार द्वारा राज्य सरकार के ऐसे अधिकारियों में से नामनिर्दिष्ट किया जाएगा, जो राज्य सरकार के संयुक्त सचिव की पंक्ति से नीचे की पंक्ति के न हों।

(1 क) यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार का कोई मंत्री बोर्ड के सदस्य के रूप में निर्वाचित या नामनिर्दिष्ट नहीं किया जाएगा :

परंतु किसी संघ राज्यक्षेत्र के संबंध में, बोर्ड पांच से अन्यून और सात से अनधिक ऐसे सदस्यों से मिलकर बनेगा, जिन्हें केन्द्रीय सरकार द्वारा उपधारा (1) के खंड (ख) के उपखंड (i) से उपखंड (iv) या खंड (ग) से खंड (ङ) के अधीन विनिर्दिष्ट प्रवर्गों से नियुक्त किया जाएगा :

परंतु यह और कि बोर्ड में नियुक्त किए गए सदस्यों में कम से कम दो सदस्य स्त्रियां होंगी :

परंतु यह भी कि ऐसे प्रत्येक मामले में, जहां मतवल्ली पद्धति विद्यमान है, वहां एक मतवल्ली बोर्ड के सदस्य के रूप में

(2) उपधारा (1) के खंड (ख) में विनिर्दिष्ट सदस्यों का निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा ऐसी रीति से होगा जो विहित की जाए :

परन्तु जहां, यथास्थिति, संसद, राज्य विधान-मंडल या राज्य विधिज्ञ परिषद् के मुस्लिम सदस्यों की संख्या केवल एक है वहां ऐसे मुस्लिम सदस्य को बोर्ड में निर्वाचित घोषित किया जाएगा :

परन्तु यह और कि जहां उपधारा (1) के खंड (ख) के उपखंड (i) से उपखंड (iii) में उल्लिखित किसी भी प्रवर्ग में कोई मुस्लिम सदस्य नहीं है वहां निर्वाचकगण का गठन, यथास्थिति, संसद, राज्य विधान-मंडल या राज्य विधिज्ञ परिषद् के पूर्व मुस्लिम सदस्यों से होगा।

(3) इस धारा में किसी बात के होते हुए भी, जहां राज्य सरकार का, ऐसे कारणों से जो लेखबद्ध किए जाएंगे, समाधान हो जाता है कि उपधारा (1) के खंड (ख) के उपखंड (i) से उपखंड (iii) में उल्लिखित किसी भी प्रवर्ग के लिए निर्वाचकगण का गठन करना युक्तियुक्त रूप से साध्य नहीं है वहां राज्य सरकार ऐसे व्यक्तियों को जिन्हें वह ठीक समझे, बोर्ड के सदस्यों के रूप में नामनिर्देशित कर सकेगी।

(4) बोर्ड के निर्वाचित सदस्यों की संख्या सभी समयों पर उपधारा (3) के अधीन जैसा उपबंधित है उसके सिवाय, बोर्ड के नामनिर्देशित सदस्यों से अधिक रहेगी।

(6) बोर्ड के शिया सदस्यों या सुन्नी सदस्यों की संख्या का अवधारण करने में, राज्य सरकार, बोर्ड द्वारा प्रशासित किए जाने वाले शिया ओकाफ और सुन्नी ओकाफ की संख्या

और महत्व को ध्यान में रखेगी और सदस्यों की नियुक्ति, जहां तक हो सके, ऐसे अवधारण के अनुसार की जाएगी।

(8) जब कभी बोर्ड का गठन या पुनर्गठन किया जाए, इस प्रयोजन के लिए बुलाए गए अधिवेशन में उपस्थित बोर्ड के सदस्य अपने में से एक को बोर्ड का अध्यक्ष निर्वाचित करेंगे।

(9) बोर्ड के सदस्यों की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, की जाएगी।

(जोर दिया गया)

8. जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है, 1995 के अधिनियम की धारा 14 के दो भाग हैं। 1995 के अधिनियम की धारा 14(1) बोर्ड के गठन से संबंधित है, और बोर्ड की सदस्यता के लिए पात्रता मानदंड बताता है, जबकि 1995 के अधिनियम की धारा 14(2) चुनाव के तरीके और 1995 के अधिनियम की धारा 14(1) (ख) के तहत पात्र मुस्लिम सदस्य के अभाव में या उनके न होने पर उत्पन्न होने वाली स्थिति के बारे में बताता है। 1995 के अधिनियम की धारा 14(1)(ख) निर्वाचक मंडल से एक या अधिकतम दो सदस्यों को चुनने की सुविधा देता है, जिसमें (i) संसद के मुस्लिम सदस्य, (ii) राज्य विधान सभा के मुस्लिम सदस्य और (iii) बार काउंसिल के मुस्लिम सदस्य शामिल हैं। केवल तब जब बार काउंसिल का कोई मुस्लिम सदस्य उपलब्ध न हो, राज्य सरकार या केंद्र शासित प्रदेश के प्रशासन को, जैसा भी मामला हो, किसी वरिष्ठ मुस्लिम अधिवक्ता को निर्वाचक मंडल में नामांकित करने का अधिकार दिया जाता है। जैसा कि 1995 के अधिनियम की धारा 14 की भाषा से स्पष्ट है, यह एक अनिवार्य प्रावधान है।
9. 1995 के अधिनियम की धारा 14(1)(ख) का स्पष्टीकरण ॥ केवल यह स्पष्ट करता है कि यदि बोर्ड का कोई सदस्य संसद का सदस्य या राज्य विधान सभा का सदस्य नहीं रहता है, तो ऐसे सदस्य को उस तारीख से बोर्ड के सदस्य के पद से हटा हुआ माना जाएगा जिस तारीख को, जैसा भी मामला हो, वे संसद के सदस्य या राज्य विधान सभा के सदस्य नहीं रहे। यहां कठिनाई इस तथ्य के कारण उत्पन्न हुई है कि बार काउंसिल का कोई मुस्लिम सदस्य, जो बोर्ड के सदस्य के तौर पर काम कर रहा है, को 1995 के अधिनियम की धारा 14(1)(ख) के स्पष्टीकरण ॥ में, संबंधित बार काउंसिल का सदस्य न रहने की वजह से उनका पद खाली माने जाने के सम्बन्ध में कोई विशेष उल्लेख नहीं किया गया है।
10. किसी विधिक नियम को समझने के लिए, सबसे पहले उसके मूल भाग पर ध्यान देना चाहिए। एक स्पष्टीकरण केवल स्पष्ट करने का कार्य करता है। अन्य शब्दों में, किसी नियम के मूल भाग को केवल स्पष्टीकरण के नज़रिए से नहीं समझा जा सकता।
11. 1995 के अधिनियम की धारा 14(1)(ख) के स्पष्टीकरण ॥ में “संदेह को दूर करने के लिए” शब्द, उस स्पष्टीकरण के स्पष्ट करने वाली प्रकृति पर प्रकाश डालते हैं। हालांकि 1995 के अधिनियम की धारा 14(1) (ख) के स्पष्टीकरण ॥ में स्पष्ट तौर पर यह उल्लेख नहीं किया गया है कि बोर्ड में बार काउंसिल के मुस्लिम सदस्य का कार्यकाल भी बार काउंसिल में उनके कार्यकाल के साथ ही सह-विस्तृत होता है, लेकिन पूरे प्रावधान को पढ़ने पर इस बात को निहित समझा जाना चाहिए। ऐसा इसलिए है क्योंकि 1995 के अधिनियम की धारा 14(ख)(i), 14(ख)(ii), और 14(ख)(iii) में सूचीबद्ध श्रेणियों के तहत लोगों की पात्रता, क्रमशः संसद, या राज्य विधान सभा, या बार काउंसिल में उनकी सदस्यता पर निर्भर करती है। संसद, या राज्य विधान सभा या बार काउंसिल में ऐसी सदस्यता के बिना, बोर्ड में उनकी सदस्यता का आधार ही खत्म हो जाता है। 1995 के अधिनियम की धारा 14(1)(ख) के स्पष्टीकरण ॥ की, बार काउंसिल के सदस्य पर प्रयोज्यता को बाहर करने का कोई संतोषजनक औचित्य नहीं है। ऐसी प्रयोज्यता को बाहर करना, वास्तव में, विधि में निहित विधायी मंशा के विरुद्ध होगा।
12. पूरे प्रावधान को पढ़ने पर, हम पाते हैं कि उपरोक्त बताया गया निहित समावेशन की पुष्टि, 1995 के अधिनियम की धारा 14(2) में जोड़े गए दो परन्तुक से भी होती है। 1995 के अधिनियम की धारा 14(2) यह प्रावधान करती है कि 1995 के अधिनियम की धारा 14(1)(ख) में बताए गए सदस्यों का चुनाव, आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अनुसार, एकल संक्रमणीय मत के ज़रिए, ऐसे तरीके से होगा जैसा

निर्धारित किया जा सकता है। पहला परन्तुक यह स्पष्ट करता है कि जहाँ संसद, राज्य विधान सभा, या बार काउंसिल के मुस्लिम सदस्यों की संख्या, जैसा भी मामला हो, केवल एक है, तो उस व्यक्ति को बोर्ड का सदस्य चुना हुआ घोषित किया जाएगा। अत्यंत महत्वपूर्ण बात यह है कि दूसरा परन्तुक यह स्पष्ट करता है कि जहाँ 1995 के अधिनियम की धारा 14(1)(ख) में बताई गई तीन श्रेणियों में से किसी में भी कोई मुस्लिम सदस्य नहीं है, वहाँ संसद, राज्य विधान सभा के पूर्व-मुस्लिम सदस्य या बार काउंसिल के पूर्व-सदस्य, जैसा भी हो, निर्वाचक मंडल का गठन करेंगे। सरल शब्दों में, पहला परन्तुक इस तथ्य को दोहराता है कि बोर्ड का सदस्य बनने के लिए दो शर्तें हैं, अर्थात:

1. उम्मीदवार मुस्लिम समुदाय से होना चाहिए, और
2. उम्मीदवार या तो संसद के सदस्य, या राज्य विधानसभा के सदस्य, या बार काउंसिल के सदस्य के पद पर होना चाहिए।

उपरोक्त शर्तों को दूसरे परन्तुक में और स्पष्टता से दोहराया गया है। दूसरे परन्तुक में कहा गया है कि तथ्यात्मक आकस्मिकता पर आधारित अपवाद के तौर पर, यदि 1995 के अधिनियम की धारा 14(1)(ख) में सूचीबद्ध किसी भी श्रेणी में कोई मुस्लिम सदस्य उपलब्ध नहीं है, तो जैसा भी हो, संसद, राज्य विधान सभा का कोई पूर्व-सदस्य या बार काउंसिल का पूर्व-सदस्य, जैसा भी हो, निर्वाचक मंडल का भाग होगा।

13. इससे यह स्पष्ट होता है कि बार काउंसिल का कोई पूर्व-सदस्य निर्वाचक मंडल का गठन तभी करेगा जब 1995 के अधिनियम की धारा 14(1)(ख)(iii) और उसमें दिए गए परन्तुक के अनुसार कोई पात्र सदस्य न हो। इसका अर्थ है कि यदि बार काउंसिल में कोई सेवारत मुस्लिम सदस्य नहीं है और कोई वरिष्ठ मुस्लिम अधिवक्ता भी उपलब्ध नहीं है, केवल तभी बार काउंसिल का कोई पूर्व-सदस्य बोर्ड का सदस्य बनने के लिए पात्र होगा। इसलिए, यह कहना स्वयंसिद्ध है कि बार काउंसिल का कोई मौजूदा मुस्लिम सदस्य, बार काउंसिल के सदस्य के तौर पर अपना कार्यकाल पूरा होने पर बोर्ड का सदस्य नहीं रहेगा, जब उसकी जगह लेने के लिए बार काउंसिल में ही कोई दूसरा मुस्लिम सदस्य उपलब्ध होगा। इस तरह, पूरे प्रावधान को पढ़ने पर, यह स्पष्ट है कि विधायिका की तरफ से 1995 के अधिनियम की धारा 14(1)(ख) के स्पष्टीकरण ॥ की प्रयोज्यता को बार काउंसिल से चुने गए बोर्ड के मुस्लिम सदस्यों पर से हटाने का कोई सचेत इरादा नहीं है।
14. किसी भी प्रावधान का उद्देश्य उसके आस-पास के प्रावधान के परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए, जिसमें परन्तुक और उसके साथ दिया गया अपवाद शामिल है। जब किसी व्यक्ति को किसी पद धारण करने के कारण कोई अधिकार अर्जित होता है, तो वह अंत में एक योग्यता बन जाती है। एक बार जब ऐसी योग्यता खत्म हो जाती है, तो वह व्यक्ति अपने पूर्व पद के आधार पर कोई दूसरा पद संभालने के लिए योग्य नहीं होगा, जब तक कि विधि स्पष्ट तौर पर ऐसा करने की सुविधा न दे। एक स्पष्टीकरण, जो कुछ श्रेणियों के बारे में केवल एक स्पष्टीकरण की प्रकृति का हो, उसे इस तरह से नहीं पढ़ा जा सकता जो प्रावधान के मूल भाग का उल्लंघन करता हो। हालांकि आम तौर पर, परन्तुक का प्रयोग प्रावधान के मूल भाग को समझने के लिए नहीं किया जा सकता है, लेकिन ऐसा करने में कोई पूर्ण वर्जन नहीं है, खासकर उन मामलों में जहां विधि विशिष्ट है और परन्तुक कोई अपवाद नहीं बनाता है। उपरोक्त उद्देश्य के लिए, स्पष्टीकरण को परन्तुक के जरिए भी समझा जा सकता है। अन्य शब्दों में, यदि कोई परन्तुक या एक्सप्लेनेशन, जैसा भी हो, इस तरह से लिखा गया है जिससे प्रावधान के मूल भाग में निहित उद्देश्य को समझने में सहायता होती है, तो उसे समझने में कोई मुश्किल नहीं होगी। अंततः, एक परन्तुक या स्पष्टीकरण का प्रयोग कई उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है। इसलिए, यह अपेक्षित है कि न्यायालय किसी प्रावधान की व्याख्या, परन्तुक या स्पष्टीकरण के परिप्रेक्ष्य में, करने से पहले ऐसे प्रयोग के संदर्भ को समझे।
15. दूसरी ओर, 1995 के अधिनियम की धारा 14(1)(ख) के स्पष्टीकरण ॥ को बार काउंसिल के मुस्लिम सदस्य पर, भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 14 के न्यायशास्त्र के आधार पर उचित वर्गीकरण के सिद्धांत को देखते हुए, जो विधि के समक्ष समता और विधियों का समान संरक्षण प्रदान करता है, भी लागू करना, स्वाभाविक है। कोई वर्गीकरण तभी उचित होगा जब कोई बोधगम्य अंतर हो जिसका विधि के द्वारा

प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य के साथ एक तर्कसंगत संबंध हो। इस मामले में, 1995 के अधिनियम की धारा 14(1)(ख) के स्पष्टीकरण ॥ की अतिशयोक्तिपूर्ण व्याख्या यह दर्शाने के लिए करना कि, बार काउंसिल के मुस्लिम सदस्य की, अपने पूर्व पद से हटने के बाद भी, बोर्ड में सदस्यता बनी रहेगी, संसद के सदस्यों और राज्य विधान सभा के सदस्यों को बार काउंसिल के सदस्यों से अलग समझने जैसा होगा। प्रावधान में इस तरह के वर्गीकरण के लिए कोई बोधगम्य अंतर नहीं दिखता। वास्तव में, यह प्रावधान को पूरी तरह से फिर से लिखने जैसा है। इस आधार पर भी, हम पाते हैं कि 1995 के अधिनियम की धारा 14(1)(ख) के स्पष्टीकरण ॥ की सामंजस्यपूर्ण अर्थान्वयन और उद्देश्यपूर्ण व्याख्या करनी चाहिए, जिसका यह अर्थ हो कि बोर्ड में सेवारत बार काउंसिल के सदस्य का कार्यकाल, बार काउंसिल में उनकी सदस्यता के साथ ही सह-विस्तृत हो जाएगा।

दत्तात्रेय गोविंद महाजन बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1977) 2 एससीसी 548

“9. ... यह सच है कि स्पष्टीकरण का आम कार्य मुख्य प्रावधान का अर्थ और प्रभाव समझाना है, जिसके लिए यह एक स्पष्टीकरण है और इसमें किसी भी संदेह या भ्रम को दूर करना है। परंतु अंत में विधायिका का उद्देश्य सर्वोपरि है और केवल एक लेबल का उपयोग ऐसे उद्देश्य को नियंत्रित या विचलित नहीं कर सकता। यह याद रखना चाहिए कि विधायिका के पास स्वयं को व्यक्त करने के अलग-अलग तरीके होते हैं और अंत में, विधायिका द्वारा उपयोग किए गए शब्द ही विधायिका के उद्देश्य का वास्तविक भंडार हैं और उन्हें उस संदर्भ और व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए समझा जाना चाहिए जिसमें वे पाए जाते हैं। इसलिए, भले ही उस विचारार्थ प्रावधान को स्पष्टीकरण कहा गया हो, हमें इसे इसकी सरल भाषा के अनुसार समझना चाहिए, न कि किसी पूर्व विचार के आधार पर... .”

(ज़ोर दिया गया)

एस. सुंदरम पिल्लई बनाम पट्टाभिरामन, (1985) 1 एससीसी 591

“46. ... अब यह यह सुस्थापित है कि किसी विधिक प्रावधान में जोड़ा गया स्पष्टीकरण किसी भी मायने में एक मूल प्रावधान नहीं है, परंतु जैसा कि शब्द का सरल अर्थ स्वयं दिखाता है, इसका अर्थ केवल कुछ भ्रम को एसमझाना या दूर करना है जो विधिक प्रावधान में आ सकती हैं। सारथी ने इंटरप्रिटेशन ऑफ़ स्टैट्यूट्स में स्पष्टीकरण के अलग-अलग पहलुओं पर बात करते हुए यह कहा है:

(क) स्पष्टीकरण का उद्देश्य है अधिनियम को स्पष्टीकरण के आलोक में समझना।

(ख) साधारणतः यह मूल प्रावधान का दायरा नहीं बढ़ाता जिसे यह समझाता है, बल्कि केवल अर्थ को बिना किसी विवाद के स्पष्ट कर देता है। (पृष्ठ 329)

47. स्वरूप ने लेजिस्लेशन एंड इंटरप्रिटेशन में बहुत सही तरीके से स्पष्टीकरण के दायरे और प्रभाव को इस तरह बताया है:

“कभी-कभी किसी विशेष बात पर ज़ोर देने के लिए स्पष्टीकरण जोड़ा जाता है, जो आमतौर पर धारा के प्रावधानों से स्पष्ट तौर पर नहीं दिखता। स्पष्टीकरण का सही कार्य यह है कि वह अधिनियम में अधिनियमित मूल प्रावधान को स्पष्ट करे या समझाए, न कि उसमें कुछ जोड़े या घटाए। अतः एक स्पष्टीकरण विनियमित भाग को न तो प्रतिबंधित करता है और न ही विस्तारित करता है; यह उस मूल धारा के दायरे को बढ़ाता या छोटा नहीं करता है जो उसे समझाना चाहिए.... स्पष्टीकरण का अर्थ उसके अपने आशय के हिसाब से निकाला जाना चाहिए; कि उसका अर्थ स्पष्ट करना है, न कि इसका विपरीत।” (पृष्ठ 297-98)

48. बिंद्रा ने इंटरप्रिटेशन ऑफ स्टैट्यूट्स (5 वे संस्करण) के पृष्ठ 67 पर निम्नलिखित कहा है:

“एक स्पष्टीकरण उस मूल धारा का दायरा नहीं बढ़ाता जिसे उसे स्पष्ट करना है। यह स्वयंसिद्ध है कि एक स्पष्टीकरण केवल स्पष्ट करता है और मूल धारा के दायरा को नहीं बढ़ाता ना ही उसमें कुछ जोड़ता है... हालांकि, स्पष्टीकरण का उद्देश्य मूल प्रावधान के दायरे को सीमित करना नहीं है.... स्पष्टीकरण का अर्थान्वयन उसकी शर्तों पर निर्भर होना चाहिए, और उसके उद्देश्य का कोई सिद्धांत तब तक नहीं माना जा सकता जब तक कि प्रयोग की गई भाषा से उसका अंदाज़ा न लगाया जाए। एक ‘स्पष्टीकरण’ का अर्थ उसके अपने आशय के हिसाब से निकाला जाना चाहिए।”

49. ऊपर लेखकों द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों को इस न्यायालय के अलग-अलग अधिकारियों का पूरा समर्थन मिला है। उदाहरण के लिए, *बर्मा शेल ऑयल स्टोरेज एंड डिस्ट्रीब्यूटिंग कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम CTO* [(1961) 1 एससीआर 902 : एआईआर 1961 एससी 315 : (1960) 11 एसटीसी 764] में एक संवैधानिक न्यायपीठ के निर्णय में, न्यायालय की तरफ से बोलते हुए, न्यायमूर्ति हिदायतुल्लाह ने यह कहा:

“अब, स्पष्टीकरण का अर्थ उसके अपने आशय के हिसाब से निकाला जाना चाहिए, और इसका अर्थ अनुच्छेद के खंड (1)(चठ) को समझना है, न कि इसका विपरीत। अनुच्छेद की सहायता से स्पष्टीकरण को समझना एक त्रुटि है, क्योंकि इससे उनकी भूमिकाएँ उलट जाती हैं।”

50. *बिहता कोऑपरेटिव डेवलपमेंट केन मार्केटिंग यूनियन लिमिटेड बनाम बैंक ऑफ बिहार* [(1967) 1 एससीआर 848 : एआईआर 1967 एससी 389 : 37 कॉम कैस 98] में इस न्यायालय ने इस तरह कहा था:

“ स्पष्टीकरण को इस तरह पढ़ा जाना चाहिए कि वह मूल धारा से किसी भी भ्रम को दूर करे और तालमेल बैठाए। इसका अर्थ यह नहीं निकाला जाना चाहिए कि धारा का दायरा बढ़ जाए।”

51. *हीरालाल रतनलाल मामले में* [(1973) 1 एससीसी 216 : 1973 एससीसी (टैक्स) 307] में इस न्यायालय ने यह कहा: [एससीसी कंडिका 25, पृष्ठ 225: SCC (टैक्स) पृष्ठ 316]

“ स्पष्टीकरण की भाषा के आधार पर इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि इसने खंड (ग) का दायरा नहीं बढ़ाया। लेकिन मामले में जो कहा गया है, उससे यह स्पष्ट है कि यदि किसी स्पष्टीकरण को सही से पढ़ने पर ऐसा लगता है कि उसने मूल धारा का दायरा बढ़ाया है, तो विधायिका के उद्देश्य को लागू किया जाना चाहिए, भले ही विधायिका ने उस प्रावधान को स्पष्टीकरण का नाम दिया हो।”

53. इस प्रकार, उपरोक्त अधिकारियों की राय से यह स्पष्ट है कि किसी विधिक नियम के स्पष्टीकरण का उद्देश्य है—

“(क) अधिनियम का अर्थ और उद्देश्य स्पष्ट करना,

(ख) जहाँ मुख्य विधि में कोई अस्पष्टता या अनिश्चिता हो, उसे स्पष्ट करना ताकि वह उस मुख्य उद्देश्य के अनुरूप हो जिसके लिए वह बनाया गया प्रतीत होता है,

(ग) अधिनियम के मुख्य उद्देश्य को और समर्थन देना ताकि उसे सार्थक वाला और सोद्देश्य बनाया जा सके,

(घ) कोई स्पष्टीकरण किसी भी तरह से अधिनियमन या उसके किसी भाग में हस्तक्षेप नहीं कर सकता या उसे बदल नहीं सकता, लेकिन जहाँ कोई कमी रह जाती है जो स्पष्टीकरण के उद्देश्य के लिए प्रासंगिक है, वहाँ बुराई को रोकने और अधिनियम के उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए यह न्यायालय को अधिनियमन के वास्तविक अर्थ और उद्देश्य को समझने में सहायता कर सकता है, और

(ङ) लेकिन, यह किसी विधि के तहत किसी व्यक्ति को दिए गए विधिक अधिकार को नहीं छीन सकता या किसी विधि के अर्थ में बाधा बनकर उसके काम करने के तरीके को खत्म नहीं कर सकता।”

(ज़ोर दिया गया)

आंध्र प्रदेश सरकार बनाम कॉर्पोरेशन बैंक, (2007) 9 एससीसी 55

“12. किसी विधिक प्रावधान का अर्थान्वयन करते समय, अर्थान्वयन का पहला और सबसे ज़रूरी नियम है शाब्दिक व्याख्या। यदि प्रावधान स्पष्ट है और यदि उस प्रावधान से विधायिका का उद्देश्य स्पष्ट है, तो हमें अर्थान्वयन के दूसरे नियमों की मदद लेने की ज़रूरत नहीं है। अर्थान्वयन के दूसरे नियम तब इस्तेमाल किए जाते हैं जब विधायिका का उद्देश्य स्पष्ट न हो। *बिहटा को-ऑप. डेवलपमेंट एंड केन मार्केटिंग यूनिन लिमिटेड बनाम बैंक ऑफ़ बिहार* [एआईआर 1967 एससी 389] में इस न्यायालय को बिहार और उड़ीसा कोऑपरेटिव सोसाइटीज़ अधिनियम, 1935 की धारा 48(1) के स्पष्टीकरण पर विचार करने के लिए कहा गया था। इस न्यायालय ने कहा कि न्यायालय को केवल लेबल पर नहीं जाना चाहिए। न्यायालय ने कहा कि स्पष्टीकरण को आम तौर पर मूल धारा में किसी भी अस्पष्टता को दूर करने के लिए पढ़ा जाना चाहिए और इसका धारा का दायरा बढ़ाये जाने के लिए इसको पढ़ा नहीं जा सकता। हालाँकि, यदि किसी स्पष्टीकरण को सही तरह से पढ़ने पर न्यायालय को किसी दिए गए मामले में ऐसा लगता है कि अगर स्पष्टीकरण मूल धारा का दायरा बढ़ाने के लिए है, तो विधायिका के उद्देश्य को लागू किया जाना चाहिए। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि ऐसे सभी मामलों में न्यायालय को विधायिका का वास्तविक उद्देश्य पता लगाना होगा। इसलिए, यह तय करने का कोई एक पैमाना नहीं है कि कोई स्पष्टीकरण भ्रम को दूर करने के लिए बनाया गया है या मूल धारा का दायरा बढ़ाने के लिए बनाया गया है...।”

(ज़ोर दिया गया)

किलोस्कर फेरस इंडस्ट्रीज़ लिमिटेड बनाम भारत संघ, (2025) 1 एससीसी 695

“66. उपरोक्त बातों से यह समझा जा सकता है कि एक स्पष्टीकरण को इस तरह पढ़ा जाना चाहिए कि वह मूल धारा के साथ तालमेल बिठा सके और उसमें कोई भी भ्रम दूर कर सके। इसका यह अर्थ नहीं निकाला जाना चाहिए कि धारा का दायरा बढ़ जाए। एक स्पष्टीकरण मूल धारा के दायरे को नहीं बढ़ाता है जिसे उसे स्पष्ट करना है। यह बात तो तय है कि एक स्पष्टीकरण सिर्फ स्पष्ट करता है, मूल धारा के दायरे को बढ़ाता या उसमें कुछ नहीं जोड़ता है। स्पष्टीकरण का उद्देश्य, हालांकि, मूल प्रावधान के दायरे को सीमित करना नहीं है। स्पष्टीकरण का अर्थान्वयन उसकी शर्तों पर निर्भर होना चाहिए, और इसके उद्देश्य का कोई सिद्धांत तब तक नहीं माना जा सकता जब तक कि प्रयोग की गई भाषा से इसका अंदाजा न लगाया जाए। एक “स्पष्टीकरण” का अर्थ उसके अपने आशय के हिसाब से निकाला जाना चाहिए। कभी-कभी किसी विशेष बात पर ज़ोर देने के लिए स्पष्टीकरण जोड़ा जाता है जो आमतौर पर धारा के प्रावधानों से स्पष्ट रूप से प्रकट नहीं होता। स्पष्टीकरण का सही कार्य है कि वह मूल प्रावधान में अधिनियमित

किसी बात को स्पष्ट करें या उसकी व्याख्या करें, न कि उसमें कुछ जोड़े या घटाए। इस तरह, स्पष्टीकरण अधिनियमन करने वाले भाग को न तो प्रतिबंधित करता है और न ही विस्तृत करता है; यह उस मूल धारा के दायरे को बढ़ाता या कम नहीं करता जो उसे स्पष्ट करना है। स्पष्टीकरण का अर्थ उसके अपने आशय के हिसाब से निकाला जाना चाहिए; कि इसका मतलब स्पष्ट करना है, न कि इसका विपरीत। किसी वैधानिक प्रावधान में जोड़ा गया स्पष्टीकरण किसी भी मायने में मूल प्रावधान नहीं है, परन्तु जैसा की उस शब्द का सरल अर्थ स्वयं पता चलता है, इसका अर्थ केवल कुछ कथन को स्पष्ट करना या उसे दूर करना है जो वैधानिक प्रावधान में आ गई हों।”

(जोर दिया गया)

शैलेश धैर्यवान बनाम मोहन बालकृष्ण लुल्ला, (2016) 3 एससीसी 619

“31. ... “उद्देश्यपूर्ण व्याख्या” या “उद्देश्यपूर्ण अर्थान्वयन” का सिद्धांत इस समझ पर आधारित है कि न्यायालय को उन प्रावधानों को वह अर्थ देना चाहिए जो ऐसे प्रावधान के पीछे के “उद्देश्य” को पूरा करते हैं। मूलभूत तरीका यह पता लगाना है कि इसे क्या सिद्ध करने के लिए बनाया किया गया है? अन्य शब्दों में, व्याख्या की प्रक्रिया से न्यायालय से उम्मीद की जाती है कि वह उस लक्ष्य को हासिल करे जिसके लिए विधिक प्रावधान अधिनियमित किया गया है। जैसा कि अहरोन बराक कहते हैं:

“उद्देश्यपूर्ण व्याख्या तीन घटक पर आधारित होती है: भाषा, उद्देश्य और समझदारी। भाषा, अर्थ संबंधी संभावनाओं की सीमा तय करती है जिसके तहत व्याख्याता एक भाषाविद् के तौर पर कार्य करता है। एक बार जब व्याख्याता सीमा तय कर लेता है, तो वह (स्पष्ट या निहित) अर्थ की संभावनाओं में से प्रावधान के विधिक अर्थ का चयन करता है। इस तरह, अर्थ का भाग व्याख्याता को उस विधिक अर्थ तक सीमित करके व्याख्या की सीमाएं तय करता है जो प्रावधान अपनी (सार्वजनिक या निजी) भाषा में रख सकता है।” [अहरोन बराक, परपसिव इंटरप्रिटेशन इन लॉ (प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 2005)]

32. उपरोक्त तीन घटक, अर्थात् भाषा, उद्देश्य और “न्यायालय के विवेकाधिकार” में से, जहाँ तक उद्देश्यपूर्ण घटक की बात है, यह अनुपात न्यायशास्त्र (*ratio juris*) है, अर्थात् प्रावधान का वास्तविक उद्देश्य। यह उद्देश्य वे मूल्य, लक्ष्य, हित, नीतियाँ हैं जिनका उद्देश्य है प्रावधान को वास्तविक बनाना। यह वह काम है जिसे पूरा करने के लिए प्रावधान बनाया गया है।

33. हम इस बात पर भी जोर दे सकते हैं कि किसी प्रावधान का वैधानिक अर्थान्वयन कभी भी एक जैसा नहीं होता, बल्कि हमेशा बदलता रहता है। हालांकि कुछ समय पहले तक शाब्दिक व्याख्या के नियम को “स्वर्णिम नियम” माना जाता था, लेकिन अब उद्देश्यपूर्ण व्याख्या का सिद्धांत मुख्य है, विशेष रूप से उन मामलों में जहां शाब्दिक व्याख्या उद्देश्य पूरा नहीं कर सकती या अर्थहीन बना सकती है। यदि इसका परिणाम ऐसा है जो विधि के उद्देश्य से भिन्न है, तो उसे स्वीकृति नहीं दी जा सकती। हार्ट और सैक्स जैसे विधिक प्रक्रिया के विचारकों ने न केवल वैधानिक व्याख्या के लिए भव्य रणनीति के तौर पर इरादतनवाद के सिद्धांत (intentionalism) को अस्वीकार कर दिया, और इसकी जगह उन्होंने उद्देश्यपूर्ण व्याख्या प्रस्तावित की, यह सिद्धांत अब न केवल इस देश में बल्कि कई दूसरे विधिक प्रणालियों में भी न्यायालयों द्वारा बड़े पैमाने पर लागू किया जाता है।”

(जोर दिया गया)

ग्रिड कॉर्पोरेशन ऑफ उड़ीसा लिमिटेड बनाम ईस्टर्न मेटल्स एंड फेरो अलॉयज, (2011)
11 एससीसी 334

“25. ... व्याख्या का स्वर्णिम नियम यह है कि किसी विधि के शब्दों को उनके प्राकृतिक, साधारण और लोकप्रिय अर्थ में पढ़ा और समझा जाना चाहिए। हालांकि, जहां प्रयुक्त किए गए शब्दों के दो या उससे अधिक अर्थ हो सकते हैं, वहाँ प्रधानता दिए जाने वाले अर्थ को पहचानने के लिए उद्देश्यपूर्ण व्याख्या को, निम्नलिखित प्रश्न पूछकर अपनाना ज़रूरी है: (i) यह प्रावधान किस उद्देश्य से बनाया गया है? (ii) प्रावधान बनाने से पहले क्या स्थिति थी? (iii) क्या बताए गए किसी भी प्रस्तावित किसी भी अर्थ से कोई अर्थहीन परिणाम निकलेगा या प्रावधान का कोई भाग अनावश्यक हो जाएगा? (iv) कौन सा अर्थ प्रावधान के उद्देश्य को आगे बढ़ाएगा? इन प्रश्नों के उत्तर न्यायालय को प्रधानता दी जाने वाली उद्देश्यपूर्ण व्याख्या को पहचानने में सहायता करेंगे, और अन्य व्याख्याओं को बाहर कर देंगे। इस प्रकार का अभ्यास, जिसमें प्रावधान के उद्देश्य का पता लगाना, और ऐसी व्याख्या का चयन करना जो उस प्रावधान के उद्देश्य को आगे बढ़ाता हो, शामिल है, तभी किया जा सकता है जब प्रावधान की भाषा के एक से अधिक अर्थ संभव हों”

(ज़ोर दिया गया)

16. हम आगे यह भी कहते हैं कि विधिक सिद्धांत “एक्सप्रेसियो यूनिअस एस्ट एक्सक्यूसियो अल्टेरियस” इस मामले में बिल्कुल भी लागू नहीं होता, क्योंकि इसे लागू करने से प्रावधान के उद्देश्य के विरुद्ध अर्थ निकाला जाएगा, जिसके परिणामस्वरूप अनुचित और अन्यायपूर्ण वर्गीकरण होगा। उपरोक्त सिद्धांत सार्वभौमिक और पूर्ण अनुप्रयोग वाला नहीं है। इस सिद्धांत को लागू करने से पहले, न्यायालय को यह समझना होगा कि क्या प्रावधान को पूरी तरह से पढ़ने से कोई प्राकृतिक अर्थ निकलता है, जो इस मामले में 1995 के अधिनियम की धारा 14(2) को धारा 14(1) के साथ पढ़कर मुमकिन है।

असिस्टेंट कलेक्टर, सेंट्रल एक्साइज बनाम नेशनल टोबैको कंपनी, (1972) 2 एससीसी 560

“30. ... यह नियम इस कहावत से उद्धृत हुआ है: “एक्सप्रेसियो यूनियस एस्ट एक्सक्यूसियो अल्टेरियस”। लेकिन, जैसा कि विल्स, जे. ने कोलगुओबौन बनाम ब्रूक्स, [(1888) 21 क्यूबीडी 52, 62] में बताया था, यह कहावत “अक्सर एक कीमती नौकर होता है, लेकिन एक खतरनाक मालिक होता है... .”। यह नियम इस मूल सिद्धांत के अधीन है कि न्यायालय को विधिक उद्देश्य और प्रयोजन का पता लगाने की कोशिश करनी चाहिए, और फिर ऐसा नियम अपनाना चाहिए जो उन्हें असरदार बनाए, न कि ऐसा जो उन्हें पराजित कर दे। इसके अलावा आवश्यक निहितार्थ द्वारा निषेध का नियम केवल तभी लागू किया जा सकता है जब किसी कर्तव्य के पालन के लिए कोई विशिष्ट प्रक्रिया निर्धारित की गई हो... .”

(ज़ोर दिया गया)

यूनियन ऑफ इंडिया बनाम बी.सी. नॉन और अन्य, 1971 एससीसी ऑनलाइन कैल 180 : (1972) 84 आईटीआर 526 : 1971 टैक्स एलआर 1198

“8. यह कहावत सार्वभौमिक अनुप्रयोग की नहीं है। क्रॉफर्ड ने अपनी किताब ‘द कंस्ट्रक्शन ऑफ स्टैट्यूट्स’, 1940 संस्करण के पृष्ठ 335-336 पर बताया है कि यह कहावत उन मामलों पर लागू नहीं होती “जहाँ यह स्पष्ट रूप से यह प्रतीत होता है कि किसी चीज़ को किसी और वजह से या केवल सावधानी के तौर पर स्पष्ट रूप से उल्लेखित किया गया था” और “यह कहावत, या व्याख्या का साधारण सिद्धांत, जैसा

कि स्पष्ट होना चाहिए, विधायिका के संभावित उद्देश्य पर आधारित है। इसलिए, जहाँ वह उद्देश्य स्पष्ट रूप से दिखाता है कि विधि के निर्माताओं का यह उद्देश्य नहीं था कि एक चीज़ का स्पष्ट रूप से उल्लेखित किया जाना अन्य सभी को बाहर कर दे, तो बेशक, यह सिद्धांत लागू नहीं होता। परिणामस्वरूप, जब वैधानिक भाषा सरल हो और अर्थ स्पष्ट हो, तो कोई निहित बहिष्करण नहीं हो सकता। अन्य शब्दों में, इस सिद्धांत का प्रयोग विधायिका के उद्देश्य का पता लगाने के तरीके के तौर पर किया जाना चाहिए जहाँ उस पर सन्देह हो, न कि विधायिका के स्पष्ट उद्देश्य को पराजित करने के तरीके के तौर पर।

9. मैक्सवेल ने द इंटरप्रिटेशन ऑफ स्टैट्यूट्स, ग्यारहवें संस्करण, पृष्ठ 306 पर निम्नलिखित टिप्पणी की है:

“कभी-कभी विधियों में ऐसे प्रावधान पाए जाते हैं, जो अधूरे तौर पर या केवल विशेष मामलों के लिए वही बनाते हैं जो पहले से ही और ज़्यादा बड़े पैमाने पर विधि थी, कभी-कभी इस बात के लिए आधार देते हैं कि साधारण विधि को बदलने का उद्देश्य आंशिक या सीमित अधिनियमन से निकाला जाना था, जो कि 'एक्सप्रेसियो यूनियस एक्सक्यूसियो अल्टेरियस' कहावत पर आधारित है। लेकिन, ऐसे मामलों में यह कहावत लागू नहीं होती। ऐसे अतिरिक्त प्रावधान (जो साधारणतः बेबुनियाद आपत्तियों और व्यर्थ संदेहों को दूर करने के लिए अधिनियम में पाए जाते हैं) से न्यायालय केवल इस निष्कर्ष पर पहुंच सकता है कि विधायिका विधि की वास्तविक स्थिति से या तो अनभिज्ञ थी या बेखबर थी, या उसने अत्यधिक सावधानी बरतते हुए काम किया। यदि विधि उससे अलग है जो विधायिका ने कल्पना की थी, तो जैसा कि कहा गया है, इस विधि से उत्पन्न निहितार्थ, उसके अस्तित्व में होने को नकार नहीं सकता, और ऐसी गलती पर आधारित कोई भी विधि, उस विधि को बनाने का प्रभाव नहीं करता जिसे विधायिका ने त्रुटिवश ऐसा मान लिया हो।”

(ज़ोर दिया गया)

कर्नाटक राज्य बनाम भारत संघ, (1977) 4 एससीसी 608

“80. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर यह स्पष्ट है कि वादी के अधिवक्ता ने बार-बार जिस सिद्धांत पर भरोसा किया, जिसके समर्थन में क्रॉफर्ड के “स्टैच्यूटरी कंस्ट्रक्शन” (1940 संस्करण) (कंडिका 195 पृष्ठ 334-335 पर) का एक भाग भी अधिवक्ता के तर्क के आधार के तौर पर बताया गया, वह यह था कि संविधान में जो स्पष्ट तौर पर दिया गया है, उसमें जिसके लिए प्रावधान नहीं किया गया है उन्हें स्पष्ट रूप से बाहर रखा जाना चाहिए। यह तर्क “एक्सप्रेसियो यूनियस एस्ट एक्सक्यूसियो अल्टेरियस” के सिद्धांत को गलत तरीके से प्रयोग करने की कोशिश है। इससे पहले कि सिद्धांत को बिल्कुल भी लागू किया जा सके, न्यायालय को किसी विधि में दिए गए किसी काम को करने का एक स्पष्ट तरीका ढूंढना होगा, जो अपने आवश्यक निहितार्थ से, उसी काम को करने से रोक सके, न कि किसी और तरीके से कुछ और करने से। उस कहावत को सही तरीके से “एक उपयोगी नौकर लेकिन एक खतरनाक मालिक” बताया गया है (कोल्क्हौन बनाम ब्रूक्स [(1888) 21 क्यूबीडी 52, 65] में लोप्स एल.जे. के अनुसार)। जिन सीमाओं या शर्तों के तहत अर्थान्वयन का यह सिद्धांत काम करता है, उन्हें अक्सर वे लोग नज़रअंदाज़ कर देते हैं जो इसे लागू करने की कोशिश करते हैं।”

(ज़ोर दिया गया)

17. इस मोड़ पर, हम सीफोर्ड कोर्ट एस्टेट्स लिमिटेड बनाम एशर [(1949) 2 के.बी. 481] में लॉर्ड डेनिंग की समझदारी भरी बातों पर ध्यान देते हैं।

“... जब कोई कमी दिखती है तो न्यायाधीश केवल हाथ जोड़कर लेखक को दोष नहीं दे सकता। उसे संसद का उद्देश्य जानने के लिए काम करना चाहिए, और उसे यह न केवल विधि की भाषा से करना चाहिए, बल्कि उन सामाजिक हालातों पर भी विचार करना चाहिए जिनसे यह उत्पन्न हुआ, और उस रिष्टि पर भी जिसे ठीक करने के लिए इसे पारित किया गया था, और फिर उसे लिखे हुए शब्द को इस तरह से जोड़ना चाहिए कि विधायिका के उद्देश्य को “बल और जीवन” मिले। हेडन के मामले में, न्यायाधीशों के निर्णय द्वारा इसे स्पष्ट रूप से बताया गया था, और आज यह सबसे सुरक्षित मार्गदर्शक है। इस विषय पर अच्छी प्रायोगिक सलाह लगभग उसी समय प्लोडेन ने अपने दूसरे खंड ईस्टन बनाम स्टड में दी थी। सरल शब्दों में कहें तो यह इस तरह है: एक न्यायाधीश को स्वयं से यह प्रश्न पूछना चाहिए: यदि अधिनियम बनाने वालों को स्वयं इस गड़बड़ी का सामना करना पड़ा होता तो वे इसे ठीक कैसे करते? फिर उसे वही करना होगा जो वे करते। एक न्यायाधीश को उस सामग्री में कोई बदलाव नहीं करना चाहिए जिससे यह बना गया है, लेकिन वह कठिनाइयों को हल कर सकता है और उसे ऐसा करना चाहिए।”

(जोर दिया गया)

18. इस मामले में, मणिपुर राज्य ने अपीलकर्ता की बोर्ड में अपीलकर्ता की सदस्यता स्वीकार करना सही समझा है, जो स्वीकार्यतः बार काउंसिल के मुस्लिम सदस्य के रूप में कार्य कर रहा है। मणिपुर बार काउंसिल ने एक राजपत्र अधिसूचना जारी की थी, जिसमें कहा गया था कि अपीलकर्ता को बार काउंसिल का सदस्य चयनित किया गया है। इसलिए, बार काउंसिल का एक सदस्य उपलब्ध था, जिसे बाद में 1995 के अधिनियम की धारा 14(1)(ख)(iii) के अनुसार बोर्ड का सदस्य चुना गया। प्रत्यर्थी क्रमांक 3, जो अब बार काउंसिल के मुस्लिम सदस्य के पद पर नहीं है, उसे यह कहने की इजाजत नहीं दी जा सकती कि बार काउंसिल का सदस्य न रहने के बाद भी, वह बोर्ड का सदस्य बना रह सकता है।
19. हम यह भी देखते हैं कि वर्तमान में, अपीलकर्ता संबंधित बार काउंसिल में एकमात्र मुस्लिम सदस्य है – वह तथ्य जिसका मणिपुर राज्य द्वारा उसे बोर्ड का सदस्य नियुक्त करते समय ध्यान में रखा है। किसी भी स्थिति में, बार काउंसिल में उसकी सदस्यता के आधार पर बोर्ड का सदस्य बनने की अपीलकर्ता की पात्रता के बारे में कोई विवाद नहीं है।
20. उपरोक्त चर्चा और तर्क के आधार पर, हम उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा आक्षेपित निर्णय में दिए गए तर्क से सहमत नहीं हैं। इसलिए, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि बॉम्बे उच्च न्यायालय, नागपुर न्यायपीठ, द्वारा श्री आसिफ पिता शौकत कुरैशी बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (रिट याचिका क्रमांक 4343/2016) में 22.12.2016 को पारित निर्णय एक अच्छी विधि नहीं है।
21. तदनुसार, आक्षेपित निर्णय को अपास्त किया जाता है, और उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा रिट याचिका (सिविल) 304/2023 को खारिज करते हुए पारित निर्णय और आदेश, को पुनर्स्थापित किया जाता है।
22. उपरोक्त शर्तों पर अपील मंजूर की जाती है।
23. लंबित आवेदन, यदि कोई हो तो, निराकृत समझे जाएंगे।

मामले का परिणाम: अपील स्वीकार की गई।

[†] शीर्ष टिप्पणियाँ तैयार की गयीं: द्वारा अंकित ज्ञान

* लेखक

(सुनीता वासवानी द्वारा अनुवादित)